**ओ३म्**

**आज 10 अप्रैल, 2015 को 141 वें स्थापना दिवस पर**

**आर्यसमाज ‘न भूतो न भविष्यति’ एक वैश्विक धार्मिक सामाजिक संस्था**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

आर्य समाज की स्थापना आज से 140 वर्ष पूर्व 10 अप्रैल, 2015 को मुम्बई में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने की थी। महर्षि दयानन्द महाभारत के बाद वेदों के प्रथम शीर्षस्थ ऐसे विद्वान थे जिनकों वेदों के सत्य अर्थ करने की योग्यता प्राप्त थी। महाभारत के पश्चात विगत 5,000 वर्षों में महर्षि दयानन्द जैसा दूसरा ईश्वरभक्त, वेदों का विद्वान, प्रचारक, भाष्यकार, समाज सुधारक, समाधि सिद्ध योगी, देश का हितैषी, रक्षक, अन्धविश्वास व समस्त कुरीतियों का उन्मूलक, विश्व के प्राणिमात्र से सच्चा प्यार करने वाला व सबका हितैषी विद्वान मनुष्य उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने आर्य समाज की स्थापना अनेक बुद्धिमान समाज के हितैषी प्रमुख अग्रणीय बन्धुओं के परामर्श देने पर की जिससे उनके समय में व उनके बाद भी वेदों की रक्षा, प्रचार, अन्धविश्वास व कुरीति उन्मूलन, शिक्षा का प्रचार-प्रसार के साथ देश व समाज के हित के कार्य तब तक चलते रहें जब तक कि लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाये। मुम्बई में 10 अप्रैल, 1875 को स्थापना के बाद आर्यसमाज के नियम व उद्देश्यों को अन्तिम रूप दिया गया। इन उद्देश्य व नियमों की कुल संख्या 10 है। पहला नियमः सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है। दूसरा नियमः ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकत्र्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है। तीसरा नियमः वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। चैथा नियमः सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। पांचवा नियमः सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिएं। छठा नियमः संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। सातवां नियमः सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसर यथायोग्य वर्तना चाहिये। आठवा नियमः अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। नौवा नियमः प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। दसवां अन्तिम नियमः सब मुनष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें। इन 10 नियमों में से तीसरे नियम में वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक कहा गया है। महर्षि दयानन्द की मान्यता थी कि वेद ईश्वर ज्ञान है। यह ज्ञान सृष्टि की आदि में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को सृष्टिकत्र्ता ईश्वर ने क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के रूप में उनके अन्तःकरणों अर्थात् आत्माओं में स्थापित किया था। वेदों का यह ज्ञान बुद्धि, तर्क, युक्ति और सृष्टिक्रम के अनुकूल होने से सर्वथा ईश्वर से उत्पन्न इस कारण सिद्ध होता है कि सृष्टि के आदि में व बाद में भी मनुष्यों द्वारा इसका सृजन नहीं किया जा सकता था अर्थात् वेद अपौरूषेय हैं जिसकी रचना मनुष्यों द्वारा नहीं हो सकती ठीक वैसे ही जैसे कि मनुष्य सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि को नहीं बना सकते।

**मनमोहन कुमार आर्य**

 उपलब्ध ज्ञान व इतिहास के अनुसार 1,96,08,53,115 वर्ष पूर्व उत्पन्न सृष्टि एवं मानवजाति के आरम्भ से विगत 5000 वर्ष पूर्व घटित महाभारत काल तक वेदों का यह ज्ञान संसार के सभी लोगों का धर्म, संस्कृति व सभ्यता के रूप में प्रचलित व प्रतिष्ठित रहा है। महाभारत के बाद संसार में अज्ञान छा गया जिससे सर्वत्र अन्धविश्वास व कुरीतियों की उत्पत्ति व प्रचलन होने लगा। ऐसा वेदों के विद्वानों की कमी व विलुप्ता आदि के कारण व लोगों में आलस्य, स्वार्थ, प्रमाद, लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि दुगुर्णों के बढ़ने से हुआ। भारत सहित संसार के सभी देश अज्ञान, अन्धविश्वास व कुरीतियों से आच्छादित हो गये। समय के साथ इसका विस्तार होता रहा और आज भी संसार पूरी तरह अज्ञान, अन्धविश्वास और कुरीतियों से मुक्त नहीं हुआ है। यदि दृष्टिपात करें तो महाभारत काल के बाद अज्ञान के कारण यज्ञों में पशु हिंसा, सर्वव्यापक ईश्वर की वेद व योग विधि से उपासना-पूजा के स्थान पर अवतारवाद, मूर्ति व पाषाण देवी देवताओं की पूजा, मृतकों का श्राद्ध, मिथ्या फलित ज्योतिष का प्रचार, बाल विवाह, मनुष्यों द्वारा मल-मूत्र आदि की सफाई का काम, जन्मना जाति व्यवस्था, गुणकर्मस्वभाव पर आधारित वर्ण व्यवस्था का लोप, सामाजिक असमानता व विषमता, ज्ञान व विज्ञान का पराभव, शिक्षा का पराभव, स्त्री व शूद्रों को वेद व अन्य प्रकार के ज्ञानार्जन से वंचित करना, दहेज प्रथा, बौद्ध, जैन, पौराणिक, पारसी, ईसाई, इस्लाम आदि मतों का प्रादुर्भाव आदि अनेक कार्य थे। इनमें से कुछ मत दूसरे मत के अनुयायियों का येनकेनप्रकारेन धर्मान्तरण कर अपनी संख्या व शक्ति बढ़ाने लगे और ऐसा करते समय उन्होंने सभी नैतिक मूल्यों की तिलांजलि भी दे दी। इन अज्ञान व अन्धविश्वासों आदि के प्रभाव से भारत पहले यवनों का और इसके बाद अंग्रेजों का गुलाम हो गया। अज्ञानान्धकार व अन्धविश्वासों की जकड़ व पकड़ बढ़ रही थी कि ऐसे समय सन् 1863 में महर्षि दयानन्द ने मथुरा में दण्डी गुरू प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द की कुटिया से अपना अध्ययन समाप्त कर गुरू की प्रेरणा से देश व दुनिया से अज्ञान व अन्धकार दूर मिटाकर वेद के ज्ञान का प्रकाश फैलाने के लिए देश की क्षितिज पर पदार्पण किया।

 महर्षि दयानन्द ने कुछ वर्षों तक गहन व गम्भीर सोच विचार कर अज्ञान, अन्धविश्वास व कुरीतियों को मिटाने की योजना बनाई और इस बीच उपदेशों व प्रवचनों से प्रचार भी करते रहे। इस बीच जो प्रमुख घटना घटी वह काशी मे 16 नवम्बर, 1869 को महर्षि दयानन्द का वहां के 30 प्रमुख विद्वान पण्डितों से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ का होना था जिसमें महर्षि दयानन्द विजित रहे। मूर्तिपूजा का प्राविधान वेदों से सिद्ध न किया जा सका। इससे अवतारवाद व मूर्तिपूजा का मिथ्यात्व सिद्ध हुआ। महर्षि दयानन्द का वेदों का प्रचार देश भर के भ्रमण व स्थान-स्थान पर उपदेशों, शंका समाधान, वार्तालाप व शास्त्रार्थ के द्वारा जारी था। ऐसा होते-होते सन् 1874 का समय आ गया जब काशी में ही एक प्रवचन को सुनकर राजा जयकृष्ण दास ने गदगद हो गये और प्रवचन के बाद उन्होंने स्वामीजी को निवेदन किया कि महाराज आपके उपदेशामृत से जो ज्ञान गंगा प्रवाहित होती है उसका लाभ आपके प्रवचन में भाग लेने वाले कुछ ही लोगों को मिलता है। कुछ समय बाद यह लोग भी उपदेश का अधिकांश भाग विस्मृत कर देते हैं। जो लोग स्थान, समय व अन्य कारणों से आपके उपदेशों को सुनने के लिए उपस्थित नहीं हो पाते वह तो सर्वथा अज्ञ ही रहते हैं। मैं अनुभव करता हूं कि आपके प्रवचनों व विचारों का लाभ आपके जीवनकाल व उसके बाद भी ऐसे सभी लोगों को भी जो आपके उपदेशों में शामिल नहीं हो पाते, मिलता रहे। अतः आपसे मेरी विनती है कि आप अपने समस्त विचारों का एक ग्रन्थ बनाकर उसे प्रकाशित करा दें जिससे अभिलषित लक्ष्य लाभ होगा। स्वामीजी प्रस्ताव की महत्ता को तत्काल समझ गये और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया और कुछ ही समय बाद वेदों पर आधारित अपने विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों पर आधारित ग्रन्थ के प्रणयन कार्य मे तन्मयता से जुट गये और तीन-चार महीनों में ही ग्रन्थ को तैयार कर लिया। इस ग्रन्थ **‘सत्यार्थ प्रकाश’** की महत्ता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि महर्षि दयानन्द ने तक तक देश भर में घूम कर हजारों ग्रन्थों को पढ़ा था और उनमें से लगभग तीन हजार व कुछ अधिक ग्रन्थों को उन्होंने प्रमाणित माना था। इतने ग्रन्थों का उनका अध्ययन व योग-समाधि के अनुभवों का परिणाम है कि विश्व का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ **‘सत्यार्थ प्रकाश’** देश को उनसे मिला। इस ग्रन्थ का पहला संस्करण सन् 1875 में प्रकाशित हुआ।

 महर्षि दयानन्द देश के अनेकों स्थानों पर प्रचार करते हुए सन् 1875 में मुम्बई पहुंचें थे। यहां अनेक महानुभाव शिष्यों ने उन्हें एक ऐसे संगठन की स्थापना की प्रेरणा की जिससे उनके उद्देश्यों के अनुरूप वैदिक सद्धर्म के अनुयायियों का संगठन बन कर उसके द्वारा स्थानीय व विस्तृत मानव समूह में वैदिक मान्यताओं व सिद्धान्तों का लक्ष्य की प्राप्ति तक प्रचार-प्रसार होता रहे। महर्षि ने इस प्रस्ताव के महत्व को भी समझा व परखा और इसे उपयोगी जानकर 10 अप्रैल 1875 में मुम्बई के काकड़वाड़ी, गिरिगांव स्थान पर प्रथम आर्य समाज की स्थापना की। आज इसी आर्य समाज की स्थापना के 140 वर्ष पूरे होने पर स्थापना दिवस मना रहे हैं। इस आर्य समाज की स्थापना होने के साथ ही इसका हर्षवर्घक शुभ समाचार देश भर में फैल गया। इसके बाद महर्षि दयानन्द जिन जिन स्थापनों पर जाते वहां लोग आग्रह करते वा महर्षि भी उन लोगों को प्रेरणा करते और वहां आर्य समाज की स्थापना हो जाती। इस प्रकार न केवल महाराष्ट्र में ही, अपितु पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, कोलकत्ता, राजस्थान आदि अनेक प्रान्तों में आर्य समाजों की स्थापना होने लगी। अब महर्षि दयानन्द जी को नये नये सुझाव भी मिलने लगे। उन्होंने इन सबको विचार कर वेद भाष्य का कार्य करना भी आरम्भ कर दिया। उनके महत्वपूर्ण ग्रन्थों में सत्यार्थ प्रकाश के बाद ऋग्वेदभाष्यभूमिका, ऋग्वेद-यजुर्वेदभाष्य, संस्कार विधि, पंचमहायज्ञविधि, आर्याभिविनय आदि अनेक ग्रन्थ हैं। महर्षि जी ने अपने ग्रन्थों के प्रकाशन हेतु एक प्रेस की स्थापना भी की। 30 अक्तूबर, सन् 1883 को मृत्यु से पूर्व उन्होंने अपनी उत्तराधिकारिणी **‘परोपकारिणी सभा’** की स्थापना भी कर दी थी। इस प्रकार से आर्य समाज का कार्य मौखिक प्रचार के साथ सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों द्वारा भी होने लगा। सत्यार्थ प्रकाश को पढ़कर देश के लोग लाभान्वित होने लगे। स्वामी श्रद्धानन्द जी पर ही नहीं अपितु उनके पौराणिक पिता नानक चन्द जी जो महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का कभी पाठ नहीं करते थे, वह भी एक बार अवकाश के समय में अपने घरेलू पण्डितजी से कुछ थोड़ा सा पाठ सुनकर अत्यधिक प्रभावित हुए और पश्चाताप करने लगे। ऐसे भी लोग हुए जिन्होंने सत्यार्थ प्रकाश को 18 बार तथा कईयों ने इससे भी कहीं अधिक बार पढ़ा और इसे लगभग स्मरण ही कर लिया। इससे उनके जीवन में क्रान्ति भावों का आविर्भाव हुआ। उन्होंने न केवल समाज सुधार में ही अपना योगदान दिया अपितु सच्चे ईश्वर का स्वरूप और उपासना की यथार्थ विधि जानकर श्रद्धापूर्वक पूर्वक इसे करने लगे। पं. श्यामजीकृष्ण वम्र्मा, पं. रामप्रसाद बिस्मिल, लाला लाजपतराय और भाई परमानन्द जी आदि सहस्रों लोगों ने देश को आजाद कराने की प्ररेणा भी इस सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ से प्राप्त की थी। अंग्रेज सरकार के कई मुकदमों को भी आर्य समाजों व आर्य भाईयों को झेलना पड़ा।

 महर्षि दयानन्द की मृत्यु होने पर उनकी स्मृति में लाहौर में दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल खोला गया जिसका विस्तार होकर वह डी.ए.वी. कालेज हो गया। इसके बाद हरिद्वार के निकट कांगड़ी में एक गुरूकुल खोला गया जो अपने समय की देश की प्रमुख राष्ट्रवादी संस्था थी तथा जिसमें गवर्नर जनरल चेम्सफोर्ड, बिटेन के प्रधानमंत्री रेम्जे मैकडानल, महात्मा गांधी तथा दीनबन्धु ऐण्ड्रुज जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति पधारते रहते थे। लगभग कुछ इसी समय जालन्धर में कन्या महाविद्यालय की नींव पड़ी जिसने पंजाब में स्त्रियों की शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति को जन्म दिया। बाद में इन सभी संस्थाओं का देभ भर में विस्तार हुआ। अन्य लोगों ने भी आर्य समाज को देखकर, स्कूल, पाठशालायें और विद्यालय खोलकर आर्य समाज का अनुकरण किया और देश में अशिक्षा व अज्ञानता का स्तर कम हुआ। धार्मिक व सामाजिक अन्धविश्वासों पर भी आर्य समाज का प्रभावशाली प्रभाव हुआ और अनेक कुप्रथायें कम या समाप्त हुई। अब समाज में बाल विवाह प्रायः बन्द हो गये हैं, विधवा विवाह होने लगे हैं तथा सामाजिक असमानता व विषमता अथवा छुआछूत पर भी आर्य समाज के विचारों व कार्यों का अनुकूल असर हुआ है। समाज में मूर्तिपूजा व फलितज्योतिष आदि अन्धविश्वास न्यूनाधिक प्रचलित हैं परन्तु इनका प्रभाव अन्धी श्रद्धा रखने वाले व्यक्तियों पर ही अधिक है। आर्यसमाज को ऐसे लोग वैदिक मान्यताओं के विरूद्ध कोई चुनौती नहीं देते। इससे लगता है कि वह आर्य समाज की मान्यताओं की सत्यता को मन व हृदय से मान चुके हैं। आर्य समाज आज की ऐसी संस्था है जिसने देश से अज्ञान व अन्धविश्वास आदि मिटाने में सर्वोपरि योगदान दिया है। ईश्वर की सच्ची उपासना प्रचलित की और वैदिक यज्ञों का पुनरूद्धार कर देश का वातावरण पवित्र बनाया है। हम यह भी कहना चाहते हैं कि आर्य समाज की मान्यतायें व सिद्धान्त वेदों पर आधारित हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान होने से सत्य है व सभी मनुष्यों का उस पर समानाधिकार है और उसको अपना कर ही उनका कल्याण हो सकता है। जीवन की सफलता का अन्य दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। हमें इन कारणों से यह भी लगता है कि वैदिक मान्यताओं और सिद्धान्तों पर आधारित धर्म जिसका प्रचार व प्रसार स्वामी दयानन्द जी ने अपने जीवनकाल में किया था, वही पूरे विश्व के मानवों का सर्वमान्य एवं सर्वहितकारी धर्म बनेगा। इन्हीं शब्दों के साथ आज आर्य समाज के स्थापना दिवस पर सभी देशवासियों को हार्दिक शुभकामनायें देते हैं एवं लेखनी को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**